ISSN : 2454-7905
MAH/NAN/10936/2015
SJIF 2025 - Impact Factor : 8.542

Worldwide International Inter Disciplinary Research Journal

(A Peer Reviewed)

Vol. I ISSUE - CXXXV Year - 11, 09 Sep. 2025

भारतीय तत्त्वज्ञान व संस्कृत साहित्य 'जीवनशैलीसाठी मार्गदर्शन'

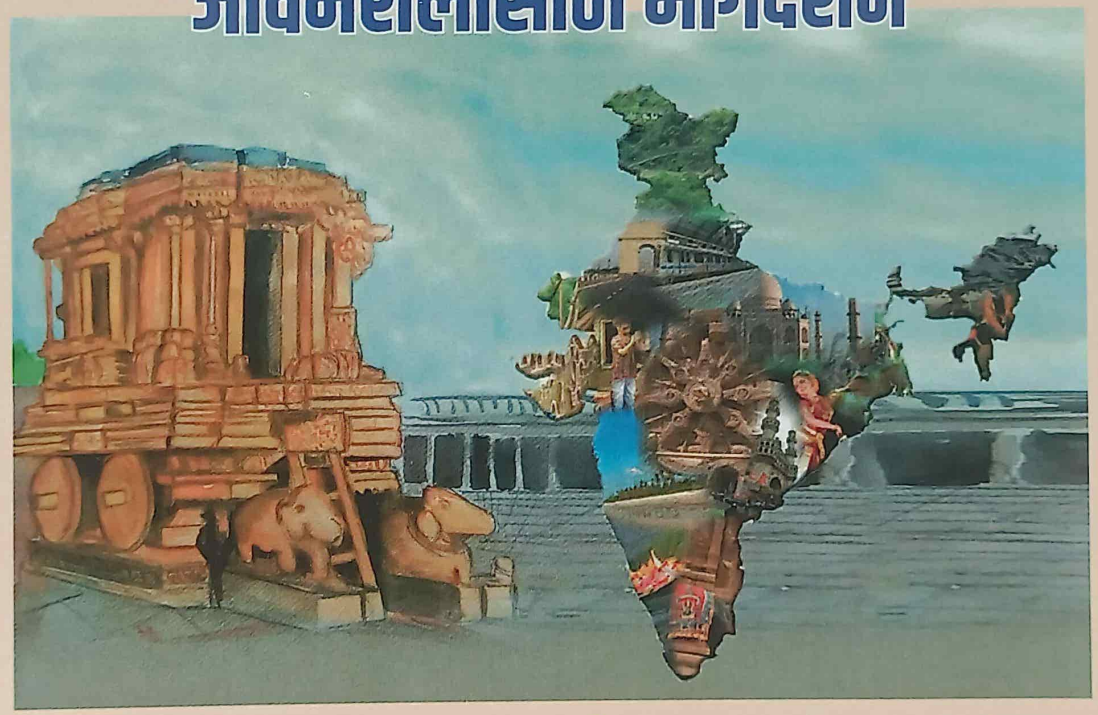

:: मुख्य संपादक ::
प्राचार्य डॉ. वसंत बिरादार पाटील

:: संपादक ::
प्रा. डॉ. प्रशांत बिरादार

:: सहसंपादक ::
प्रा.डॉ. सीमा उप्पलवार

Quarterly Research Journal

(Arts - Humanities - Social Sciences - Sports, Commerce, Science, Education, Agriculture, Management, Law, Engineering, Medical, Ayurveda, Pharmaceutical, Journalism, Mass Communication, Library Science Faculty's)

INDEX

	Title of the Paper	Name of Author	Page No.
01.	Indian Philosophy and Stress Management	Dr. M. G. Bhusnar	01
02.	Philosophy Based on Bhagavad Gita and Personality Development in Modern Times	Dr. Poonam M. Gahukar	06
03.	The Philosophical significance of Shrimad Bhagavad-Gita and the Divine Language Sanskrit	Dr. H. D. Sawant	09
04.	The Relationship between Shiva and Shakti in Veerashaiva Philosophy	Dr. Shashikant B. Dargu	15
05.	The Bhagavad Gita and Modern Personality:Embracing the Qualities of Sthitaprajna and Sadbhakta	Dr. Madhusudan Cherekar	19
06.	Indian philosophy and Stress Management	Dr. Rahul Dnyneshewar Kapure	23
07.	The Scientific Nature of the Sanskrit Language	Dr. Sanivani Nerkar	26
08.	Divine Love and Devotion in Rabindranath Tagore's *Gitanjali*	Dr. Kiran Wamanrao Gutte	31
09.	Contemporary Relevance of Vallabhācārya's Philosophy	Dr. Anish Shah	34
10.	Theology and Ethics: A Guide for Today's Society	Gore Sakharam Yashwanta	38
11.	Philosophy of *Bhagavad-Gita* and Personality Development in Modern Life	Krity Kedia	41
12.	Values of Indian Philosophy and Contemporary Relevance	Krushna Balajirao Hangargekar	44
13.	Sanskrit Literature: A Treasure Trove for Library Users	Mr. Parmeshwar Manikrao Ingle	49
14.	Astaṅga Yoga and life style – guidance from Sanskrit texts	Mrs. Sejal Dwarkesh Pandya	51
15.	Osho's Philosophy: Nature, Features, and Significance	Pratik Chhaya Ashok Bele	55
16.	Yoga and philosophy	Zol Manisha Bhaskarrao	57
17.	धर्म और नीति कि परस्पर पुरकता	प्रा. डॉ. अमन बगाडे	60
18.	योगसूत्र में चित्तशुद्धि का उपाय	डॉ. वेदप्रकाश डोणगावकर	63
19.	तुलसीदास के साहित्य में प्रतिबिम्बित जीवनमूल्य	डॉ. श्रीदेवी बाबुराव बिरादार	67
20.	अष्टांगयोग की जीवनशैली में उपादेयता	D. Aruna	70
21.	हिंदी साहित्य और जीवन-मूल्यों की प्रासंगिकता	प्रो. डॉ. नागराज उत्तमराव मुळे	75
22.	आचार्य रजनीश के श्रीमद्भगवद्गीता के संबंध में विद्रोही विचार	प्रा. डॉ. गायकवाड पंडित बाबुराव	78
23.	पुरुषार्थ आणि जीवनातील त्यांची भूमिका	डॉ. सुनिलदत्त एस. गवरे	81

योगसूत्र में चित्तशुद्धि का उपाय

डॉ. वेदप्रकाश डोणगावकर
तत्त्वज्ञान विभाग प्रमुख
मातोश्री शांताबाई गोटे कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय वाशिम

भारतीय दार्शनिक परंपरा में महर्षी पतंजलि का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। विद्वानों द्वारा पतंजलि का कार्यकाल ईसा पूर्व पहली शताब्दी बताया जाता है। पतंजलि ने 'योगसूत्र' नमक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में कुल चार अध्याय है। इस ग्रंथ का मुख्य विषय चित्त को उसकी मूल अवस्था तक पहुंचाना है। इसी उद्देश्य से इस ग्रंथ में योग की चर्चा की गई है। पतंजलि ने **"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"** इन शब्दों में योग की व्याख्या की है। जिसका अर्थ चित्त से वृत्ति का निरोध करना ही योग है, ऐसा होता है।

चित्त का स्वरूप :

महर्षी पतंजलि के अनुसार मूलतः 'चित्त' चैतन्य रूप पुरुष है। वह क्लेश और कर्म से असंबंध है। वह दृष्ट और दृश्य से अरक्त है। वह विवेक एवं समाधि की ओर झुका हुआ है। अर्थात वह सभी प्रकार की दुख से मुक्त है। वह शाश्वत आनंद से युक्त, शुद्ध स्वरूप है। किंतु इसके बावजूद भी यह चित्त कुछ वृत्तियों से ग्रस्त हो जाता है। और जब इसके कारण के संदर्भ से हम सोचते हैं तो हमें यह ध्यान में आता है की, यह चित्त इंद्रियों के माध्यम से बाह्य विषय की ओर खींचा जाता है। साथ ही साथ वह मन के माध्यम से विषय का आकार ग्रहण करता है। अर्थात चित्त अपने मूल अवस्था से दूर हो जाता है। चित्त के इस नई अवस्था का कारण वृत्ति कहलाता है।

वृत्ति का स्वरूप :

महर्षी पतंजलि ने अपने योगसूत्र के प्रथम अध्याय में चित्तवृति की चर्चा की है। उनके अनुसार चित्तवृत्ति पांच प्रकार की है। 'प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति" यह पांच वृत्तीय है। यही पांच वृत्तीया चित्त को अपने मूल स्वरूप से भटकाते हुए आज्ञान की ओर ले जाते हैं। इन वृत्तियों के पांच उपप्रकार है। जिसे पतंजलि ने अपने योगसूत्र के दूसरे अध्याय में 'क्लेश या क्लिष्ट' के नाम से अधोरेखित किया है। "अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश" यही वह पांच क्लेश है। यही पांच वृत्तीय और पांच क्लेश चित्त के मूल रूप को बाधा पहुंचती है। जिसके कारण चित्त अपने वास्तविक रूप में नहीं पहुंच पाता।

चित्तशुद्ध का उपाय :

हमने देखा की चित्त मूल रूप से शुद्ध ही होता है। किंतु पांच प्रकार के वृत्ति और पांच प्रकार के क्लेश के कारण वह अपने मूल रूप से परावर्तित हो जाता है। ऐसे में उसे उसके मूल रूप में पहुंचाना पतंजलि के योग दर्शन का उद्देश्य रहा है। जिसके चलते उन्होंने अपने योगसूत्र ग्रंथ में इसके संबंध में कुछ उपाय बताएं है। जिसमें अभ्यास, वैराग्य, चित्त के प्रयत्न और अष्टांग योग की बात की जाती है।

अभ्यास :

योगसूत्र के 1/12 में "अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्नीरोधः" इन शब्दों में पतंजलि ने अभ्यास एवं वैराग्य का उल्लेख वृत्तियों के निरोध के संदर्भ से किया है। "चित्तवृत्ति निरोध का स्थिरता पूर्वक किया गया प्रयत्न अभ्यास कहलाता है।" (यो. सू. 1/13) वृत्तियों के निरोध के लिए चित्त को स्वयं जागृत रहते हुए उसके जो उपाय बताए गए है उसका निष्ठापूर्वक नित्य अनुकरण करना चाहिए।

चित्त के अभ्यास की अवस्था में भी कभी-कभी बाधा निर्माण हो जाती। बाधाएं दो प्रकार बताई जा सकते है। जिसमें से एक को 'अन्तराय' और दूसरे को 'विक्षेप' कहा जाता है। वास्तविक रूप से यह 'विक्षेप' उस 'अन्तराय' के

ही उप प्रकार के रूप में स्वीकारे जाते है। 'अन्तराय' में "व्याधि, कर्म न करने की इच्छा, संशय, प्रमाद, आलस्य, तृष्णा, भ्रांति, नैराश्य और विचलितता" इन नौ बाधाओं का उल्लेख किया है। इन नौ बाधाओं के परिणाम स्वरूप 'विक्षेप' उत्पन्न होते है। जिसमें हमें "दुःख, उद्विग्नता, अंगमेजयत्व (थरथराना) और श्वास-प्रश्वास" इन चार बाधाओंका भी अनुभव आता है। इस प्रकार की सभी बाधाओं से निपटने के लिए योगसूत्र में 'एकतत्त्व' के अभ्यास का उपाय बताया गया है। यहां यह सवाल उपस्थित हो सकता है कि यह 'एकतत्त्व' क्या है ? इसके संदर्भ में योगसूत्र में भले ही स्पष्ट रूपसे नहीं कहा गया होगा। किंतु उनका तात्पर्य "ईश्वर या प्रणवतत्त्व" से हो सकता है।

वैराग्य :

योगसूत्र में चित्त को शुद्ध बनाने के हेतु अभ्यास का महत्व बताया गया है और अभ्यास में निर्माण होने वाली बाधाओंको स्पष्ट किया गया किया गया है। उन बाधाओंको दूर करने के लिए 'एकतत्त्व' के अभ्यास को सुझाया गया है। लेकिन यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि इस संपूर्ण प्रक्रिया में पतंजलि ने वैराग्य को भी महत्व दिया है। पतंजलि का मानना है कि, हम जो देखते हैं और सुनते हैं उससे हमारे मन में एक प्रकार की तृष्णा उत्पन्न होती है और जिसके चलते हमारी बाधाएं खत्म होने की बजाय बढ़ती रहती है। जिसके चलते उन्होंने अपने योगसूत्र में (1/15-16) "अपर और पर" नमक वैराग्य के दो प्रकार बताए हैं। अपर वैराग्य को 'वशीकार' वैराग्य भी कहते हैं। "दिखाई देने वाले और सुनाई देने वाले विषयों की तृष्णा से मुक्त होना अपर या वशीकार वैराग्य है।" और "पुरुष में प्रकृति के तीन गुणोका अभाव होना यह 'पर- वैराग्य' है।" आमतौर पर लोगों का यह मानना है कि वैराग्य सांसारिक जीवन से पार या स्वतंत्र होने की अवस्था है। किंतु यह पूर्णतः सही बात नही है। योग दर्शन में विषयों को नियंत्रित रखना और उस विषयों से अपने आप को मुक्त करना आदि को वैराग्य माना गया है। वैराग्य को दृढ करणे के लिये चित्त को स्वयं कूच प्रयत्न भी करणे चाहिये।

चित्त के प्रयत्न :

चित्त को वृत्तियों से मुक्त होने के लिए स्वयं कुछ प्रयत्न करना भी आवश्यक है। वास्तविक रूप से चित्त तो चेतन है फिर भी उसका अधिष्ठान भौतिक देह है। इस देश के माध्यम से चित्त को यह प्रयत्न करने चाहिए। ऐसे इन प्रयत्नों का उल्लेख भी पतंजलि ने अपने योग सूत्र में (यो. सू. 1/33- 93) किया है। जैसे चित्त को, "सुख-दुख, पुण्य, अपुण्य की अपेक्षा मैत्री, करुणा, मुदती और अपेक्षा की भावना रखनी चाहिए। प्राण वायु को बाहर छोड़ने की और अंदर लेने की क्रिया करनी चाहिए। मन को किसी विशिष्ट विषय में लगाने की वृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए। शोकरहित और प्रकाशमय प्रवृत्ति को दृढ वनाना चाहिए। जिसके वीतराग अर्थात राग द्वेष क्षय हो चुके हैं उनकी प्रवृत्ति का अनुकरण करना चाहिए। स्वप्न और निद्रा अवस्था में प्राप्त ज्ञान का अनुभव (चिंतन, मनन, समीक्षण) करना चाहिए। अपने मन से या किसी आप्त द्वारा सूचित किए हुए किसी भी विषय में ध्यान एकाग्र करना चाहिए।" इन क्रिया को पतंजलि ने 'प्रसादिक क्रिया' भी कहा है।

किंतु यहां हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल अभ्यास से, या वैराग्य से या चित्त के साधारण प्रयत्नो से हम अपने चित्त को शुद्ध नहीं कर सकते। या केवल इन्ही के मध्यम से हम चित्त को उसकी मूल अवस्था में नहीं पहुंचा सकते। पतंजली द्वारा अभ्यास, वैराग्य, चित्त के प्रयत्न के साथ साथ 'अष्टांग योग' को भी महत्व दिया गया है।

अष्टांग योग (अष्टांग अंग) :

अष्टांग योग इस शब्द का सामान्य अर्थ आठ प्रकार के योग ऐसा हो सकता है। किंतु वास्तविक रूप से चित्त की वृत्तियों को दूर करने के लिए पतंजलि ने जिन आठ उपायों का उल्लेख किया है उसे ही अष्टांग योग कहते हैं। "यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि" यही वह आठ उपाय है जो चित्त को वृत्तियों से दूर करने में सहायक बनती है तथा चित्त को अपने मूल अवस्था में पहुंचती है। पतंजलि ने अपने योगसूत्र में दूसरे और

तीसरे अध्याय में इस अष्टांग योग का अर्थ सूचित है। । इस अष्टांग योग का स्वरूप निम्नलिखित तरीके स्पष्ट किया जा सकता है :

1) यम : महर्षि पतंजलि द्वारा यम के पांच प्रकार बताए गए हैं। "अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचारी और अपरिग्रह" यही यम के प्रकार है । और उनके अनुसार, जाति देश कल एवं निमित्य के अवसर पर भी इन पांच यमों का पालन करना 'सार्वभौम महाव्रत' कहलाता है। पतंजलि ने यम की कोई व्याख्या नहीं की है किंतु इसके लाभ बताए हैं । जैसे कि "अहिंसा का पालन करने से अन्य प्राणी आपके प्रति वैरभाव छोड़ देते हैं । सत्य का पालन करने से अपने प्रत्येक 'कार्य का फल' अनिवार्य मिलता है । अस्तेय का पालन करने से 'रत्न' की उपलब्धि होती है । ब्रह्मचर्य का पालन करने से 'वीर्य' लाभ होता है। अपरिग्रह स्थिर होने पर अपने 'जन्म के पूर्व घटनाओं का बोध' होता है।" (यो. सू. 2/30, 35-39)

यम के इन पांच प्रकारों को देखते हुए हम यह मान सकते हैं कि, "यम यह एक ऐसी मानसिक एवं भौतिक क्रिया है कि जिसके आधार पर मनुष्य के व्यवहार का मूल्यमापन करते हुए उसे व्यक्ति के और उसकी क्रिया के संदर्भ में अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित, योग्य या अयोग्य, जैसे निर्णय दिए जा सकते हैं।" और उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि, जैसे कोई व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है तो सर्वप्रथम उसके मन में वह भाव उत्पन्न होता है अर्थात यह एक मानसिक क्रिया है और जब इस मानसिक क्रिया या भाव के अनुसार वह व्यक्ति हर किसी से अहिंसा भाव रखते हुए व्यवहार करता है तो उसका आचरण अच्छा या बुरा इसमें से कुछ ना कुछ एक कहलाता है।

2) नियम : नियम के भी पांच प्रकार है। "शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान" यह पांच नियम पतंजलि ने अपने योगसूत्र में बताया है। इन नियमों को पतंजलि ने 'महाव्रत' भी कहा है । पतंजलि के द्वारा शौच के माध्यम से शुद्धता को, संतोष के माध्यम से समाधान को, तप के माध्यम से सहनशीलता को, स्वाध्याय के माध्यम से नित्य अभ्यास को और ईश्वरप्राणिधान के माध्यम से समर्पण को महत्व दिया गया है। पतंजलि ने इन नियमों के लाभ भी बताए हैं । "शौच के कारण हमें हमारे 'शरीर के प्रति जिज्ञासा और अन्य जीव से संसर्ग' की भावना उत्पन्न होती है। संतोष को महत्व देने पर हमें 'सुख' का लाभ होता है। तप के चलते जो 'अशुद्ध विषय हम का क्षय' होता है । स्वाध्याय से 'इष्ट देवता संप्रयोग' साध्य होता है। और ईश्वरप्रणिधान से 'समाधि' की सिद्धि होती है। (यो. सू. 2/31, 40-45)

इन सभी लाभों को ध्यान में रखते हुए पतंजलि द्वारा बताए गए यम और नियम दोनों को प्रतिदिन हमें हमारे आचरण का अंग बनाए रखना चाहिए।

3) आसान : महर्षि पतंजलि के अनुसार, स्थिरतापूर्वक सुखमय होकर बैठना आसन कहलाता है। इस अवस्था में शरीर को प्रयत्न पूर्वक शिथिल रखना चाहिए। आसन की सिद्धि से ठंडी और गर्मी जैसे द्वंद से बचा जा सकता है, यही आसन का लाभ भी है। (यो. सू. 2/46-48)

4) प्राणायाम : महर्षि पतंजलि के अनुसार श्वास-प्रश्वास के गति का विच्छेद करना प्राणायाम है । आंतरिक, बाह्य और स्तंभ (तटस्थ) यह प्राणायाम के तीन प्रकार है । इसके बावजूद बाह्य और आंतरिक इन दोनों विषयों का त्याग यह भी प्राणायाम का चौथा प्रकार है । देश, काल और संख्या के अनुसार भी यह प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होता है। (यो. सू. 2/49- 53)

5) प्रत्याहार : महर्षि पतंजलि के अनुसार, अपने विषयों के प्रति उपयोग में आनेवाले इंद्रियों को वहां से हटकर उसे चित्त के स्वस्वरूप में लगाना प्रत्याहार है। प्रत्याहार के कारण हमारे इंद्रिय हमारे वश अर्थात नियंत्रण में रहते हैं । (यो. सू. 2/54-55)

6) धरना : महर्षि पतंजलि के अनुसार हमारे चित्त को देश विशेष में स्थिर करना धरना कहलाता है। (यो. सू. 3/1)

7) ध्यान : महर्षि पतंजलि के अनुसार, देश विशेष में स्थिर होने के बाद किसी विशिष्ट प्रत्यय में चित्रों को एकतन अर्थात एकाग्र करना ध्यान है। (यो. सू. 3/2)

8) समाधि : महर्षि पतंजलि के अनुसार, ध्यान की अवस्था विकसित होने के बाद, केवल ध्येय वस्तु का आभास या अनुभूति होना और अंत में अपने आप के स्वरूप को शून्य स्वरूप समझना समाधि कहलाता है। (यो. सू. 3/3)

निष्कर्ष

1. मूलतः चित्त शुद्ध स्वरूप है किंतु इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले विषयों के कारण चित्त में कुछ वृत्तीय और कुछ क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं जिसके चलते हैं चित्त अपने मूल स्वरूप को भूलकर दु:ख का अनुभव करता है।
2. चित्त को अपने मूल अवस्था में लाने के लिए महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र को स्थापित किया है।
3. पतंजलि ने सर्वप्रथम चित्त की मूल अवस्था से परावृत्त या दूर होने के जो कारण है उसे स्पष्ट किया। उनके दृष्टिकोण से वृत्ति और क्लेश चित्त को उसकी मूल अवस्था से दूर कराते हैं।
4. इस प्रक्रिया में चित्त की भी कुछ गलतियां है। चित्त अपनी मूल अवस्था में सदैव स्थित नहीं रहता।
5. इसलिए पतंजलि ने अभ्यास को महत्व दिया है। फिर भी चित्त के समक्ष कुछ बाधाएं आती रहती है। पतंजलिने उन बाधाओं को भी अधिरेखित किया है।
6. सभी प्रकार की बाधाओं को दूर रखने के लिए पतंजलि वैराग्य और प्रसादिक जैसी क्रियाओं को महत्व देते है ।
7. वैराग्य और प्रसादिक जैसी क्रियाओं के माध्यम से पतंजलि ने चित्त से जिन बातों की अपेक्षा करी है वह एक अर्थ से उसे चित्त की परीक्षा ही होती है। अर्थात चित्त को स्वयं यह लगना या मानना चाहिए कि "मै अपनी मूल अवस्था विमुक्त हो गया हूं। मैं वृत्तियों से ग्रस्त हुआ हूं। लेकिन इसके बावजूद मैं इन सभी विषयों से विमुख होकर पुनः शुद्ध होने का प्रयत्न करूंगा।"
8. चित्त के इस संकल्प को पूर्ण करने के लिए पतंजलि ने अष्टांग योग को सहायक मानते हुए उसको एक अर्थ से उपाय के रूप में प्रस्तुत किया है।
9. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यही वह आठ उपाय है जो चित्त को वृत्तियों से दूर करने में सहायक बनती है तथा चित्त को अपने मूल अवस्था में पहुंचाती है।
10. किंतु इसके लिए चित्त को भी निष्ठा पूर्वक अभ्यास, वैराग्य एवं कुछ प्रयत्न अनिवार्य रूप से करने चाहिए। तात्पर्य अपने आप को शुद्ध बनाने हेतु हमें खुद दृढ़ निश्चायी बनकर प्राप्त उपायों को अनिवार्य रूप से अपनाना चाहिए है।

संदर्भ सूची :

1. कुमठेकर (डॉ.) उदय, योगदर्शन (पतंजलि योगसूत्र), प्रसाद प्रकाशन, पुणे 2007
2. डोणगावकर (डॉ) वेदप्रकाश, भारतीय तत्त्वज्ञान, मैत्री प्रकाशन, लातूर 2020